कुछ राजभवन युद्ध पथ पर हैं।

लेखक- पी.डी.टी. आचार्य लोकसभा के पूर्व महासचिव है

यह आलेख सामान्य अध्ययन प्रश्न पत्र-II (भारतीय राजव्यवस्था) से संबंधित है।

द हिन्दू

10 जनवरी, 2022

राज्यपाल को अपने राज्य की सरकार के मित्र और मार्गदर्शक होने का ध्यान रखना चाहिए, खासकर विपक्ष शासित राज्यों में

महाराष्ट्र और केरल में राज्यपालों और राज्य सरकारों के बीच टकराव के बारे में हालिया मीडिया रिपोर्टों ने राज्य के संवैधानिक प्रमुख और निर्वाचित सरकार के बीच नाजुक संबंधों पर ध्यान केंद्रित किया है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में स्थिति वास्तव में इतनी विचित्र थी कि राज्यपाल ने राज्य सरकार द्वारा अनुशंसित अध्यक्ष के चुनाव की तारीख को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। नतीजतन, विधानसभा अध्यक्ष का चुनाव नहीं हो सका।

केरल के हालात भी कम अजीब नहीं हैं। राज्य के राज्यपाल ने कानून के अनुसार कन्नूर विश्वविद्यालय के कुलपति को फिर से नियुक्त किया, उन्होंने केरल सरकार के खिलाफ आरोप लगाया कि उन पर कुलपति को फिर से नियुक्त करने के लिए सरकार का दबाव था। राज्यपाल ने स्वीकार किया कि उन्होंने सरकारी दबाव में आकर गलत काम किया है। उन्होंने यह भी जोड़ा है कि वह अब कुलाधिपति नहीं बने रहना चाहते हैं, हालांकि वह पदेन क्षमता में इस पद पर हैं, जिसका अर्थ है कि जब तक वे राज्यपाल हैं तब तक उन्हें कुलाधिपति बने रहना होगा। लेकिन राज्यपाल अड़े हुए हैं।

राज्यपाल द्वारा अपने ही राज्य की सरकार पर आरोप लगाना कोई पहली बार की घटना नहीं है। पश्चिम बंगाल में यह एक नियमित विशेषता रही है। इसी तरह, राजस्थान के साथ-साथ महाराष्ट्र में भी मंत्रिपरिषद् की सलाह को अस्वीकार करने का मामला फिर से देखा गया है। बेशक, पहले भी राज्यपालों और मुख्यमंत्रियों के बीच मतभेद रहे हैं, लेकिन ये दुर्लभ घटनाएं हैं। लेकिन खुले टकराव अब स्पष्ट रूप से संवैधानिक रूप से अनुमेय व्यवहार की सीमाओं को पार कर गए हैं।

विवेकाधीन शक्तियों के साथ

राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच अच्छे समय में भी संबंध बिल्कुल सरल और तनाव मुक्त नहीं रहे हैं। इसका राज्यपाल के कार्यालय के पूरे विचार और उसके पिछले इतिहास से कुछ लेना-देना है। औपनिवेशिक युग में, राज्यपाल प्रांत का पूर्ण शासक था जो अंततः महामहिम, राजा के प्रति जवाबदेह था। राज्यपाल पर संविधान सभा में बहस को करीब से देखने से पता चलता है कि राज्यपाल को दी जाने वाली शक्तियों पर अलग-अलग विचार थे। वास्तव में, संविधान सभा में ऐसे सदस्य थे जो चाहते थे कि राज्यपाल औपनिवेशिक काल के राज्यपालों की तरह शक्तिशाली हो।

हालांकि बी.आर. अम्बेडकर स्पष्ट थे कि राज्यपाल केवल एक संवैधानिक प्रमुख होना चाहिए और कार्यकारी शक्ति पूरी तरह से चुनी हुई सरकार में निहित होनी चाहिए, उन्होंने राज्यपाल में कुछ विवेकाधीन शक्तियों को निहित करने के विचार को बढ़ावा दिया। इस संबंध में उनके द्वारा इस सोच से निर्देशित किया गया था कि राज्य सरकारें केंद्र सरकार के अधीन हैं और इसलिए, राज्यपाल को यह सुनिश्चित करने के लिए विवेकाधीन शक्तियां दी जानी चाहिए कि वे ऐसा कार्य करें।

अंतत:, संविधान सभा से उभरा राज्यपाल का पद भारत के राष्ट्रपति की ही तरह मात्र एक संविधान प्रमुख था किंतु राज्यपाल के पास संविधान द्वारा या उसके तहत निर्धारित कुछ विवेकाधीन शक्तियों को प्रदान किया गया, जबकि राष्ट्रपति को ऐसी कोई शक्ति नहीं दी गई है। इसके अलावा, अनुच्छेद 163 (संविधान के मसौदे में अनुच्छेद 143) 'भारत सरकार अधिनियम 1935 की धारा 50 का अंधा पुनरुत्पादन' (एच.वी. कामथ) बन गया। 1935 के अधिनियम में प्रावधान के इस सटीक पुनरुत्पादन ने, काफी हद तक, लोकतांत्रिक भारत में निर्वाचित सरकार की तुलना में राज्यपाल की वास्तविक शक्तियों के बारे में एक अस्पष्टता पैदा की, जिसे बाद में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने शमशेर सिंह (1974) वाद में स्पष्टता प्रदान की। शमशेर सिंह से नबाम रेबिया (2016) वाद तक शीर्ष अदालत ने घोषणा की कि राज्यपाल, राज्य की कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में, मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर ही कार्य कर सकता है "कुछ ज्ञात असाधारण स्थितियों को छोड़कर"।

महाराष्ट्र का मामला

महाराष्ट्र के राज्यपाल द्वारा विधानसभा अध्यक्ष के चुनाव की तारीख को स्वीकार करने से इनकार करना संवैधानिक सरकार के सिद्धांतों के खिलाफ है। यहाँ यह कहा जाना चाहिए कि संविधान ने अनुच्छेद 178 के तहत अध्यक्ष के चुनाव में राज्यपाल को कोई भूमिका नहीं सौंपी है, जो कि विशेष रूप से सदन का काम है। यह केवल सदन का नियम है जो कहता है कि राज्यपाल तारीख तय करेगा। ऐसे में इस तिथि का कोई खास महत्व नहीं है। सभी विधानसभाओं में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के तहत, सरकार तारीख तय करती है और इसे विधानसभा के सचिव को बताती है जो इसे राज्यपाल के कार्यालय में उनके हस्ताक्षर के लिए अग्रेषित करता है। तारीख को औपचारिक रूप से राज्यपाल द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद, जो वह करने के लिए बाध्य है – सदस्यों को इसके बारे में सूचित किया जाता है।

अब सवाल यह है कि अगर राज्यपाल तारीख को मंजूरी नहीं देते हैं तो क्या चुनाव हो सकते हैं? राज्यपाल द्वारा तारीख तय करना किसी संवैधानिक महत्व का प्रश्न नहीं है; सदन द्वारा चुनाव महत्वपूर्ण बात है। इसलिए, यदि राज्यपाल चुनाव के रास्ते में खड़ा होता है, तो सदन के लिए एकमात्र रास्ता उस विशेष नियम में संशोधन करना है जो राज्यपाल को तारीख तय करने का अधिकार देता है। यह प्रदान कर सकता है कि सचिव सरकार से तारीख प्राप्त करने पर उसी के सदस्यों को सूचित करेगा। चुनाव या तो गुप्त मतदान के माध्यम से या सदन में एक प्रस्ताव के माध्यम से किया जा सकता है जैसा कि लोकसभा द्वारा किया जाता है। लेकिन यह कहा जाना चाहिए कि स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह पहली बार हो सकता है कि किसी राज्यपाल ने अध्यक्ष के चुनाव की तारीख तय करने से इनकार कर दिया और इसके परिणामस्वरूप चुनाव नहीं हो सका। महाराष्ट्र विधानसभा लंबे समय से बिना अध्यक्ष के काम कर रही है।

केरल मामला

केरल की स्थिति और भी विचित्र है। वहां, कन्नूर विश्वविद्यालय के मौजूदा कुलपति की पुनर्नियुक्ति को लेकर विवाद खड़ा हो गया है। राज्य सरकार की ओर से मौजूदा कुलपति की पुनर्नियुक्ति के लिए हैं। राज्यपाल ने विश्वविद्यालय के पदेन कुलाधिपति और नियुक्ति प्राधिकारी होने के नाते इस सुझाव को स्वीकार कर लिया और उन्हें फिर से नियुक्त किया। कुछ समय बाद राज्यपाल ने गंभीर आरोप लगाकर सार्वजनिक किया कि उन्होंने सरकार के दबाव में नियुक्ति के आदेश पर हस्ताक्षर किए हैं और कुलपति को दबाव में फिर से नियुक्त करके गलत काम किया है।

यहाँ यह कहा जाना चाहिए कि राज्यपाल ने मौजूदा कुलपति को फिर से नियुक्त करने में कानून के अनुसार पूरी तरह से काम किया था। विश्वविद्यालय अधिनियम के तहत, एक मौजूदा कुलपति पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र है। चूंकि अधिनियम पुनर्नियुक्ति के लिए कोई विशिष्ट प्रक्रिया निर्धारित नहीं करता है, इसलिए कुलाधिपति ने सरकार से किए गए सुझाव या सिफारिश को स्वीकार करने में सही था। वास्तव में, वह विधानसभा में विपक्ष के नेता सहित किसी भी व्यक्ति के सुझावों को स्वीकार कर सकता है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि कुलाधिपति के रूप में राज्यपाल को विश्वविद्यालय में कुलपति और अन्य की नियुक्ति के मामले में मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। वह बिल्कुल स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकता है। वह सरकार के सुझाव को खारिज भी कर सकते थे।

केरल उच्च न्यायालय ने गोपालकृष्णन बनाम चांसलर, केरल विश्वविद्यालय में इस कानूनी बिंदु को स्पष्ट किया है। इसलिए केरल के राज्यपाल को पुनर्नियुक्ति के मामले में स्वतंत्र रूप से अपना दिमाग लगाने की जरूरत थी।उन्हें कुलपति के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने और नियुक्ति आदेश पर हस्ताक्षर करने से पहले नियुक्त व्यक्ति की योग्यता के बारे में खुद को पूरी तरह से संतुष्ट होना चाहिए था। माना जा रहा है कि उन्होंने ऐसा किया भी होगा। इसलिए, यह चौंकाने वाला है कि उन्होंने सार्वजनिक रूप से जाने और सरकार के खिलाफ गंभीर आरोप लगाने और इस प्रक्रिया में खुद को दोषी ठहराने का फैसला क्यों किया। भ्रम को बढ़ाते हुए, राज्यपाल ने कुलाधिपति के पदेन प्रभार से खुद को अलग कर लिया और घोषणा की कि वह कुलाधिपति के रूप में कार्य नहीं करेंगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जब तक वह अपने मूल पद को नहीं छोड़ता, तब तक वह पदेन हैसियत से अपने प्रभार को त्याग नहीं सकते।

अलगाव सार है।

वाकई ये बेहद अजीबोगरीब हालात हैं। राज्यपाल एक उच्च संवैधानिक प्राधिकरण है। उसे संविधान की चारदीवारी के भीतर काम करना चाहिए और अपनी सरकार का मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक बनना चाहिए। संविधान उन्हें समानांतर सरकार बनने की इजाजत नहीं देता है; न ही यह उन्हें राज्यपाल के रूप में अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार बनाता है। इस तरह के टकराव केवल विपक्ष शासित राज्यों में होते हैं, यह दर्शाता है कि राजनीतिक औचित्य संवैधानिक औचित्य से आगे निकल गया है। संविधान सभा की बहसों के माध्यम से, कोई भी पंडित ठाकुर दास भार्गव के इन बुद्धिमान शब्दों को देखता है, जो विधानसभा के एक कर्तव्यनिष्ठ सदस्य हैं: "वह (राज्यपाल) पार्टी से ऊपर का व्यक्ति होगा और वह मंत्री और सरकार को एक अलग नजरिए से देखेगा। वैराग्य भारत की प्राचीन संस्कृति का सार है और राज्यपाल का सरकार से वैराग्य होना आवश्यक है।" लेकिन पंडित ठाकुर दास की आवाज जंगल में आवाज बनकर रह गई है।

Committed To Excellence

संभावित प्रश्न (प्रारंभिक परीक्षा)

प्र. निम्नलिखित में से किस नियुक्ति के लिए राज्यपाल स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकता है?

(क) कुलपति

(ख) विधानसभा अध्यक्ष

(ग) मंत्री

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

Expected Question (Prelims Exams)

Q. For which of the following appointments the Governor can act independently?

(a) Vice-Chancellor

(b) Speaker of the Assembly

(c) Minister

(d) None of the above

संभावित प्रश्न (मुख्य परीक्षा)

प्र. "पिछले कई वर्षों में राज्यपालों के द्वारा विपक्षी दलों की राज्य सरकारों में अपने संवैधानिक दायित्व से अधिक राजनैतिक भूमिका को निभाया जा रहा है, जिससे संघ राज्य संबंधों में टकराहट देखी गई है।" ऐसे में क्या राज्यपाल के पद को लेकर किसी प्रकार के संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता है? टिप्पणी करें।

(250 शब्द)

Q. "Over the past several years, the role of political master being played by the governors in the state governments of the opposition parties more than their constitutional obligation, which has seen conflicts in union-state relations." In such a situation, is there any need for any kind of constitutional amendment regarding the post of Governor? make a comment.

(250 Words)

Committed To Excellence

नोट :- अभ्यास के लिए दिया गया मुख्य परीक्षा का प्रश्न आगामी UPSC मुख्य परीक्षा को ध्यान में रख कर बनाया गया है। अतः इस प्रश्न का उत्तर लिखने के लिए आप इस आलेख के साथ-साथ इस टॉपिक से संबंधित अन्य स्त्रोतों का भी सहयोग ले सकते हैं।